17 सितम्बर 2015, कुल पृष्ठ : 8, मूल्य : 2/- आर. एन. आई. 31109/77 JaipurCity / 224 / 2015-17

जैन पथप्रदर्शक

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के व्याख्यान प्रतिदिन अब आधे घंटे

जिनवाणी चैनल पर

जिनवाणी JINVANI सुख, शान्ति, समृद्धि

प्रतिदिन

प्रातः 7.00 से 7.30 बजे तक

वर्ष : 38, अंक : 12 सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** आजीवन शुल्क : 251 रुपये

सितम्बर (द्वितीय), 2015 (वीर नि. संवत्-2541) सह-सम्पादक : **डॉ. संजीवकुमार गोधा व पण्डित परमात्मप्रकाश भारिल्ल** वार्षिक शुल्क : 25 रुपये

डॉ. भारिल्ल का नवीन प्रकाशन

डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा रचित नवीन कृति **'आगम के आलोक में समाधिमरण या सल्लेखना'** का प्रथम संस्करण 25 हजार की संख्या में 15 अगस्त को प्रकाशित किया गया था।

इस प्रथम संस्करण की सभी 25 हजार प्रतियाँ मात्र 20 दिन की अल्पावधि में ही समाप्त हो गई है। 5 हजार प्रतियों का द्वितीय संस्करण शीघ्र प्रकाशित किया जा रहा है।

5 रुपये मूल्य की इस पुस्तक को जो भाई/मण्डल/संस्था अपनी ओर से वितरित कराना चाहते हैं; 1000 या अधिक पुस्तकों का ऑर्डर भेजने पर उनका नाम पुस्तक के कवर पृष्ठ 2 पर अंकित कराकर भेजा जायेगा। **अपना ऑर्डर शीघ्र भेजें या ईमेल करें** – साहित्य विक्रय विभाग, टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर 302015 (राज.)

ptstjaipur@yahoo.com

दशलक्षण पर्व के अवसर पर प्रभावना में वितरण हेतु –

ऑर्डर शीघ्र भेजें / छूट का लाभ लें

पण्डित सूरचंदजी कृत समाधिमरण पाठ को अ.भा. जैन युवा फैडरेशन द्वारा संगीतमय रिकॉर्ड कराया गया है। इसकी सी.डी. (हिन्दी अर्थ की पुस्तिका सहित) 20/- रुपये में बिक्री हेतु उपलब्ध है। दशलक्षण पर्व के अवसर पर प्रभावना हेतु जो भाई इनका वितरण करना चाहते हैं, वे एक साथ 50 या अधिक सी.डी. का ऑर्डर भेजने पर 5/- रुपये की छूट के साथ मात्र 15/- रुपये में सी.डी. प्राप्त कर सकते हैं।

डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा लिखित नवीनतम कृति 'आगम के आलोक में समाधिमरण या सल्लेखना' भी मात्र 5/- रुपये में साहित्य बिक्री विभाग में उपलब्ध है।

साहित्य नि:शुल्क मंगा लें

जो भी साधर्मीजन अपने स्वाध्याय हेतु ग्रंथ चाहते हैं उन्हें सोनगढ, जयपुर, मंगलायतन, मुम्बई, दिल्ली, जबलपुर इत्यादि मुमुक्षु संस्थाओं द्वारा प्रकाशित साहित्य नि:शुल्क दिया जा रहा है। अपनी आवश्यकता के अनुसार नि:शुल्क साहित्य नीचे लिखे पते पर संपर्क कर मंगवा सकते हैं – अमित जैन C/o DTDC कोरियर, 3312, लाल गली, दिल्ली गेट, दरियागंज, दिल्ली - 110002 मो.-09811393356

शिक्षक दिवस पर विशेष सभा

जयपुर (राज) : यहाँ टोडरमल स्मारक भवन में दिनांक 5 सितम्बर को शिक्षक दिवस के अवसर पर एक विशेष सभा का आयोजन किया गया, जिसके अन्तर्गत सभी गुरुजनों ने अपने गुरुजनों सम्बन्धित विशिष्ट संस्मरण सुनाये।

इस अवसर पर डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के मार्मिक उद्बोधन के अतिरिक्त पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल, ब्र. यशपालजी जैन, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा, डॉ. दीपकजी वैद्य, श्री परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल, श्री शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल, पण्डित प्रमोदजी शास्त्री एवं श्रीमती कमला भारिल्ल ने अपने गुरुजनों से संबंधित जीवन के विशेष प्रसंगों से टोडरमल महाविद्यालय के सभी छात्रों को लाभान्वित किया। इनके अतिरिक्त पण्डित पीयूषजी शास्त्री, पण्डित संजयजी सेठी, पण्डित संजयजी बड़ामलहरा, पण्डित अनिलजी शास्त्री, पण्डित अनेकान्तजी भारिल्ल, पण्डित उदयजी चौगुले, पण्डित गोम्मटेशजी शास्त्री, पण्डित जिनकुमारजी शास्त्री, विदुषी प्रतीति पाटील आदि महानुभाव भी मंचासीन थे।

कार्यक्रम का संचालन सौरभ जैन फूप एवं अच्युतकांत जैन ने किया।

श्री टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के खाते में

बैंक में पैसे जमा कराने वाले महानुभावों से

अत्यन्त आवश्यक नम्र निवेदन

हमारे पास अनेकों इसप्रकार की राशियाँ जमा हैं, जिनके स्रोत ज्ञात न होने, मालूम न होने के कारण उनका यथायोग्य जमा-खर्च सम्भव नहीं हो पा रहा है।

आपने यदि कोई राशि हमारे खाते में जमा करवाई हो व जिसकी रसीद आपको न मिली हो तो कृपया तुरन्त हमें सूचित करें ताकि उसे उपयुक्त खाते में जमा करके उसकी रसीद आपको भिजवाई जा सके।

राशि जमा कराने हेतु संस्था के खाते का विवरण निम्नानुसार है –

Name of Account	: **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट**
Bank A/c No.	: 0247000100024619
Accounts Type	: Saving A/c
Name & Address of Bank	: PNB Bank, Bapu Nagar Branch
Bank Micr Code	: 302024004
Bank IFSC Code	: PUNB0024700
PAN NO.	: AAATP2595H

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-4, बापूनगर, जयपुर-302015 (राज.) फोन : (0141)2705581, 2707458

E-mail - ptstjaipur@yahoo.com

सम्पादकीय –

विज्ञान का परिवर्तित जीवन

– पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे...)

अपने जीवन परिवर्तन की कहानी सुनाते हुये विज्ञान ने कहा –''मित्र ? नगर निगम के नियमानुसार हमारा कारखाना तो शाम आठ बजे ही बन्द हो जाता था। रात में अन्य व्यापारिक काम कुछ रहता नहीं था। अत: घण्टे-दो घण्टे को दोस्तों से मिलने और मनोरंजन के लिये मैं क्लब चला जाता था, परन्तु मेरा क्लब जाना परिवार में किसी को भी पसन्द नहीं था; क्योंकि वहाँ दोस्त लोग मिल-जुलकर मुझे यदा-कदा थोड़ी-बहुत मदिरा पिला दिया करते थे और कभी-कभी रमी (जुआ) खेलते-खेलते घर आने में देर भी हो जाती थी। इसकारण मेरी वाइफ (पत्नी) विद्या मुझसे रूठी-रूठीसी रहने लगी थी।

मेरा मित्र सुदर्शन भी नहीं चाहता था कि मैं संजू, राजू, अन्नू और अज्जू जैसे लोगों के साथ उठूँ-बैठूँ।

मेरे निजी डॉक्टर की भी यही सलाह थी कि मुझे अब हर हालत में अपने सभी शौकों को तिलांजलि देकर शान्ति से घर में ही अधिक से अधिक समय रहकर विश्राम करना चाहिये, अन्यथा मेरा शेष जीवन खतरे से खाली नहीं है।

सर्वप्रथम तो मेरे परम सद्भाग्य से ही मानो ये सब कारण कलाप मिल गये और उनके कारण मेरा उस क्लब में जाना सदा के लिये बन्द हो गया, जहाँ जाने से मैं दुर्व्यसन में फँस गया था।

दूसरे, उन दिनों आज की तरह घर-घर में ना तो टेलिविजन सेट थे और ना वी.सी.आर. एवं वीडियो फिल्में, जिनके कारण जीवन के अमूल्य क्षण यों ही चले जाते हैं। दुर्भाग्य से यदि उन दिनों ये साधन होते तो कम से कम मेरे जैसे व्यक्ति के जीवन के ये शेष महत्वपूर्ण क्षण भी निश्चित ही बर्बाद हो जाते।

तीसरे, डॉक्टर की सलाह के अनुसार अब मुझे आये दिन रोज-रोज सिनेमा जाना भी संभव नहीं था, इसकारण उस दोष से भी बच गया।

पर अब मेरे सामने समय बिताने की समस्या मुँह फाड़े खड़ी थी। आठ बजे से घर बैठे-बैठे मैं करूँ तो करूँ भी क्या ? इतने जल्दी कोई नींद तो आती नहीं है। यही मेरी एक समस्या थी।

देखो, विधि की विडम्बना ! इतने बड़े-बड़े गलत मार्गों से बच निकलने पर भी अभी मेरे दुर्भाग्य का अन्त नहीं आया था। तभी तो मैंने 'कुंए से निकला तो खाई में गिर गया' वाली कहावत को चरितार्थ करते हुये पुन: अपने पतन का एक नया मार्ग खोज लिया।

अब मैं वाचनालय से बाजारू अश्लील कथा साहित्य घर ला-लाकर पढने लगा। पहले तो मैं इन्हें मात्र नींद लाने के लिये पढता था, पर बाद में मेरा मन इन काम-कथाओं में ऐसा उलझ गया कि उस कुत्सित साहित्य ने मेरी नींद हराम कर दी। अब मैं रात के दो-दो बजे तक उन्हीं में आँखें गड़ाये रहता। जब देर से सोता तो सवेरे नौ-दस बजे के पहले नींद खुलने का नाम ही नहीं लेती। इससे एक बार फिर मेरी सारी दिनचर्या ही चरमरा गई।

दैवयोग से वाचनालय तो एकबार लगातार एक सप्ताह तक बन्द रहा और अपन ठहरे पक्के बनिये, सो खाने-पीने और भोग-विलास में चाहे जितना खर्च कर दें; पर साहित्य खरीदकर कभी नहीं पढते। पर मजबूरी यह थी कि प्रतिदिन की आदत के अनुसार कुछ न कुछ पढे बिना नींद भी नहीं आती थी। अत: सोचा – 'चलो, आज दादाजी की अलमारी ही टटोलकर देखते हैं। संभावना तो कम ही थी; क्योंकि उन्हें तो केवल धार्मिक ग्रंथ और महापुरुषों के जीवन-चरित्रों को संग्रह करने का ही शौक था। फिर भी सोचा – चलो देख लेते हैं, देखने में हानि भी क्या है, संभव है अपने काम की कुछ पुस्तकें मिल जायें।''

वहाँ उपन्यासों और लौकिक कहानियों का तो काम ही क्या था ? पर हाँ, कुछ पौराणिक कथा-कहानियों की पुस्तकें अवश्य मिल गईं। 'न मामा से तो काना मामा ही भला'- ऐसा विचार कर उन्हें ही पढना प्रारम्भ कर दिया।

प्रारम्भ में तो कुछ अटपटा लगा, क्योंकि उनकी शैली ही बिलकुल पुरानी और अपरिचित थी, परन्तु पढना तो था ही, सो उन्हें ही मनोयोगपूर्वक पढता रहा। जब गहराई में उतरने की कोशिश की तो बीच-बीच में आये आचार्यों के उपदेशों ने, नीति वाक्यामृतों ने और पुनर्जन्म के विचित्र कथानकों ने मुझे इस दिशा में सोचने के लिये बाध्य तो किया ही, साथ ही चित्त को भी अपनी ओर आकर्षित किया।

तब से मेरा मन अधिकांश इसी तरह के साहित्य पढने में रमने लगा। इसप्रकार मेरे जीवन में आये इस परिवर्तन के पीछे मूलत: तो पौराणिक कथायें ही हैं, जिनमें पुण्य-पाप के फलों की विचित्रता का विस्तृत वर्णन था। पूर्वकृत पापोदय में बड़े-बड़े राजा-महाराजा और धर्मात्मा साधु-सन्तों को भी कैसी-कैसी यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं तथा वर्तमान पापभावों में लिप्त प्राणियों को नरकों में कैसे-कैसे कष्ट उठाने पड़ते हैं।

उन दारुण दु:ख भोगने वाले जीवों के कारुणिक दृश्यों का चित्रण पढकर मैं पापाचरण से विरक्त तो हुआ, पर मेरे मन में मानसिक उतार-चढाव भी कम नहीं आये। मैं उनके सत्यासत्य के

निर्णय करने में कई रात तो सो भी नहीं सका था। अन्तत: मैं इस निष्कर्ष पर तो पहुँच ही गया कि –''अपने किये पापों का फल तो प्राणियों को भोगना ही पड़ता है और मैंने भी अपने जीवन में कोई कम पाप नहीं किये हैं। क्या मुझे भी यह सब नहीं भोगना पड़ेगा ?

धीरे–धीरे मेरी धारणायें व मान्यतायें बदलीं। मैं अब तक जो धर्म को ढोंग व पूजा–पाठ को पाखण्ड समझ रहा था, अब मेरी समझ में आया कि – किसी पुजारी विशेष के पाखण्डी होने से पूजा–पाठ को ही पाखण्ड मान लेना कोई समझदारी का काम नहीं है। इसी तरह धर्मात्मा के भेष में कोई साधू ढोंगी भले हो, पर धर्म की साधना या साधुपना ढोंग नहीं है। धर्म तो आत्मा व परमात्मा का स्वरूप है। अहिंसा, क्षमा, शान्ति व वीतरागता धर्म है और हिंसा, काम, क्रोध, राग–द्वेष आदि अधर्म है। इसमें ढोंग का क्या काम है ?

जिस तरह अग्नि का धर्म उष्णता है, पानी का धर्म शीतलता है, उसी तरह आत्मा का धर्म ज्ञाता–दृष्टा रहना है। ज्ञान आत्मा का धर्म है और अज्ञान अधर्म। वीतरागता आत्मा का धर्म है और राग–द्वेष करना अधर्म। क्षमा आत्मा का धर्म है और क्रोध अधर्म। इस धर्म में कहाँ आडम्बर है और कहाँ पाखण्ड ?''

यही सोचते–विचारते धीरे–धीरे पता नहीं, मेरी रुचि कब–कैसे अनायास ऐसी बदली कि अब तो जब देखो तभी उन्हीं कथानकों की चर्चा–वार्ता करने का मन होने लगा है। चाहे घर हो या दुकान, मंदिर हो या अन्य कोई स्थान, जब और जहाँ भी मौका मिलता है, घूम–फिरकर वही प्रसंग छिड़ जाता है। अब तो धार्मिक चर्चा–वार्ता करने में ही अधिक आनन्द आता है।''

जिसकी जिसमें लगन लग जाती है, फिर उसे सर्वत्र वही–वही दिखाई देता है। लगन का तो स्वरूप ही कुछ ऐसा है, देखो न, जब लड़का–लड़की की परस्पर लगन (सगाई) हो जाती है, तब से एक–दो दिन तो बहुत दूर, एक–दो घड़ियाँ भी ऐसी नहीं जातीं, जब एक को दूसरे की याद न आती हो।' बस, यही स्थिति विज्ञान की उन पौराणिक–धार्मिक कथानकों चर्चा–वार्ताओं के बारे में हो गई थी।

बैठे–बैठे वह बोल उठता –''अहा ! पुराणों का भी अपना अलग आकर्षण होता है। भले ही वे आज की आधुनिक शैली में नहीं है, तथापि अपनी ओर आकर्षित करने की अद्‌भुत क्षमता उनमें है। पुराणों में मुख्यरूप से तो महापुरुषों के आदर्श चरित्र एवं उनके पूर्वभवों का ही वर्णन होता है, परन्तु बीच–बीच में नीतिवाक्यामृत, ऋषियों के प्रेरणादायक उपदेश एवं धर्ममार्ग में लगाने और पापाचरण से हटाने के प्रयोजन से लिखे गये अनेक उपकथानक भी होते हैं।''

इसप्रकार पुराणों का परिचय देते हुये विज्ञान ने कहा –''भाई वे मुझे इतने रुचिकर लगे कि मैं कुछ ही दिनों में एक के बाद एक अनेक पुराण पढ गया। उनके पढने से मनोरंजन तो जो हुआ सो हुआ ही, साथ ही अनेक नये तथ्य भी ध्यान में आये। अतीत को जानने की जिज्ञासा भी जागृत हुई और परलोक, नरक –स्वर्ग तथा जीवों के भव–भवान्तरों को जानने के बारे में भी जिज्ञासा जगी।''

अभी तक मैं जिन स्वर्गों व नरकों को कल्पनालोक की वस्तुयें मान रहा था, अब वे यथार्थ की भावभूमि पर उतर आये।

सारा जिनागम सर्वज्ञ व वीतराग की वाणी तो है ही, वैज्ञानिक व मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर भी आधारित है और युक्ति व स्वानुभव से भी सभी बातें सिद्ध हैं।

''स्वाध्याय किये बिना किसी को कैसे पता चले कि वास्तविकता क्या है?''

अभी तक मैं स्वर्गों व नरकों को किसी सनकी मस्तिष्क की उपज व कल्पनालोक की वस्तुएँ मात्र मानता था, परन्तु पुराणों के अध्ययन करते समय नरकों की सिद्धि के पक्ष में एक तर्क मुझे यह भी ध्यान में आया कि – वस्तुत: इस मनुष्यलोक में तो ऐसी कोई व्यवस्था है नहीं जिससे हम जगत को सही न्याय दे सकें, अत: कोई एक स्थान ऐसा अवश्य होना चाहिये, जहाँ पूरा न्याय दिया जाता हो।

कल्पना कीजिये, किसी व्यक्ति ने यहाँ एक निरपराध प्राणी की निर्दयतापूर्वक हत्या की तो भी न्यायालय उसे फांसी की सजा देगा और यदि उसने उन्मादवश इसीप्रकार की निर्दयतापूर्वक हजारों हत्यायें कर डालीं तो भी न्यायालय के पास उसे एकबार फांसी का दण्ड देने के सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं है। जब यहाँ हजार हत्याओं के अपराध को कोई अन्य विशेष दण्ड–विधान ही सम्भव नहीं है तो प्रकृति में कहीं न कहीं तो ऐसी व्यवस्था होनी ही चाहिये न? जहाँ एक से अधिक हत्यायें करनेवालों को तदनुरूप दण्ड व्यवस्था दी जा सके। बस, उसी स्थान का नाम नरक है, जहाँ पर दण्ड के रूप में नारकियों द्वारा तिल–तिल के बराबर देह के खण्ड–खण्ड करने से अनन्तबार मरणतुल्य दु:ख भोगना पड़ता है, इसकारण मर जाना चाहता है, पर नरकों में अकाल मृत्यु न होने से मरता नहीं है।''

ज्ञान को विज्ञान की इसप्रकार की युक्तिसंगत और आगमसम्मत गंभीरवार्ता और विचारधारा सुनकर भारी प्रसन्नता हुई, अत: उसने विज्ञान को हार्दिक बधाई दी। **(क्रमश:)**

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समस्त ऑडियो – वीडियो, प्रवचन साहित्य एवं अन्य अनेक जानकारियों के लिये अवश्य देखें–
वेबसाईट – www.vitragvani.com
संपर्क सूत्र–श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई
Ph. : 022-26130820, 26104912, E-Mail - info@vitragvani.com

अक्टूबर शिविर की अग्रिम आमंत्रण पत्रिका

अक्टूबर शिविर की अग्रिम आमंत्रण पत्रिका

दृष्टि का विषय

17 पाँचवाँ प्रवचन -डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे...)

समयसार अनुशीलन का निम्नांकित कथन विशेषरूप से प्रत्येक मुमुक्षु को दृष्टव्य है तथा पुन:-पुन: मनन-चिन्तन करने योग्य है।

''अपनी आत्मवस्तु के इन चार युगलों में सामान्य, अभेद, नित्य और एक - इनकी एकता द्रव्यार्थिकनय का विषय बनती है और इसीकारण इसका नाम द्रव्य है। बस यही द्रव्य, द्रव्यदृष्टि का विषय बनता है; इसमें अपनापन स्थापित होना ही सम्यग्दर्शन है।

इसके विरुद्ध अपनी आत्मवस्तु के विशेष, भेद तथा उसकी अनित्यता एवं अनेकता की पर्याय संज्ञा है और इनमें अपनापन होना ही मिथ्यादर्शन है।

द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत इस द्रव्य को ही यहाँ शुद्धद्रव्य कहा है और इसे विषय बनाने वाले नय को शुद्धनय, निश्चयनय या शुद्धनिश्चयनय कहा गया है।[१]''

यहाँ शुद्धता का अर्थ रागादिक से रहितपना नहीं है। यद्यपि शुद्धता में रागादिक नहीं हैं, तथापि **यहाँ भेद का नाम अशुद्धता तथा भेद से रहितपने का नाम शुद्धता है।** 'राग की अशुद्धि का अर्थ यहाँ इसलिए नहीं है; क्योंकि उसको तो कालभेद में रखकर पहले ही निकाल दिया गया है।'

इसप्रकार द्रव्यार्थिकनय का विषयभूत जो द्रव्य है, वही द्रव्यदृष्टि का विषय है।

इसप्रकार हमारे सामने तीन द्रव्य उपस्थित हैं -

पहला तो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाववाला द्रव्य।

दूसरा प्रमाण का विषयभूत द्रव्य, जिसमें गुण व पर्याय दोनों शामिल हैं।

तीसरे द्रव्य का नाम - सामान्य, एक, अभेद, नित्य और एक - इन सभी की अखण्डता ही द्रव्यदृष्टि का विषय है। इस दृष्टि के विषय में कालभेद, गुणभेद आदि पर्यायें शामिल नहीं हैं।

प्रश्न - प्रत्येक वस्तु स्वचतुष्टय से युक्त होती है। स्वचतुष्टय के बिना वस्तु की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। जिसप्रकार **प्रत्येक वस्तु स्वयं द्रव्य है, उसके प्रदेश उसका क्षेत्र हैं, उसके गुण उसका भाव हैं; उसीप्रकार उसकी पर्यायें उसका काल हैं।** दृष्टि के विषय में गुणभेद का निषेध करके भी गुणों को अभेदरूप से रखकर 'भाव' को सुरक्षित कर लिया गया; प्रदेशभेद का निषेध करके भी प्रदेशों को अभेदरूप से रखकर 'क्षेत्र' को सुरक्षित कर लिया गया; उसीप्रकार पर्यायभेद का निषेध करके, पर्यायों को अभेदरूप से रखकर 'काल' को भी सुरक्षित कर लेना चाहिए; पर आप तो पर्यायों का सर्वथा निषेध कर वस्तु को काल से अखण्डित नहीं रहने देना चाहते हैं।

उत्तर - इसी समयसार में आगे भावना भाई गई है कि **'न द्रव्येण खण्डयामि, न क्षेत्रेण खण्डयामि, न कालेन खण्डयामि, न भावेन खण्डयामि; सुविशुद्ध एको ज्ञानमात्रभावोऽस्मि'** न मैं द्रव्य से खण्डित हूँ, न क्षेत्र से खण्डित हूँ, न काल से खण्डित हूँ और न भाव से खण्डित हूँ; मैं तो सुविशुद्ध एक ज्ञानमात्र भाव हूँ। उक्त भावना में आत्मा को द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से पूर्णत: अखण्डित रखा गया है। **(क्रमश:)**

आवश्यकता है

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट में कार्यालयीन कार्य करने हेतु एक व्यक्ति की आवश्यकता है जिसे कम्प्यूटर का सामान्य ज्ञान भी हो। स्नातक/मुमुक्षु भाई को प्राथमिकता। वेतन - योग्यतानुसार। बायोडाटा भेजने हेतु **संपर्क -** पीयूष जैन (मैनेजर), ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर-302015 मोबाइल - 9785643202

शोक समाचार

(1) इंटाली-उदयपुर (राज.) निवासी श्री गिरधारीलालजी जैन मुम्बई का दिनांक 17 अगस्त को शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। आप अत्यंत स्वाध्यायप्रेमी एवं तत्त्वप्रचार हेतु समर्पित व्यक्ति थे। आपकी स्मृति में संस्था को 5 हजार रुपये प्राप्त हुये।

(2) कोटा (राज.) निवासी श्रीमती राजकुमारी जैन कासलीवाल ध.प. श्री माणकचंदजी जैन का दिनांक 8 अगस्त को 71 वर्ष की आयु में शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। आपकी स्मृति में जैनपथप्रदर्शक हेतु 1000/- रुपये प्राप्त हुये।

दिवंगत आत्मायें चतुर्गति के दु:खों से छूटकर शीघ्र ही अनंत अतीन्द्रिय आनन्द को प्राप्त हों - यही मंगल भावना है।

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

18 से 29 सितम्बर	दिल्ली (विश्वासनगर)	दशलक्षणपर्व
2 अक्टूबर	जयपुर (टोडरमलजी मंदिर)	ताम्रपत्र-मोक्षमार्गप्रकाशक विमोचन
18 से 27 अक्टूबर	जयपुर (टोड. स्मारक भवन)	शिक्षण शिविर
31 अक्टू. व 1 नव.	इन्दौर (ढाईद्वीप)	वेदी शिलान्यास
8 से 12 नवम्बर	देवलाली-नासिक (महा.)	भ.महावीर निर्वाणोत्सव
18 से 25 नवम्बर	जयपुर (टोड. स्मारक भवन)	सिद्धचक्र मण्डल विधान
25 से 30 दिसम्बर	गढाकोटा (म.प्र.)	पंचकल्याणक प्रतिष्ठा

धर्म क्या, क्यों, कैसे और किसके लिए – *(उन्नीसवीं कड़ी, गतांक से आगे)*

– परमात्मप्रकाश भारिल्ल

पिछले अंक में हमने पढा कि हमारे अपने स्वरूप के बारे में हमारा अनिर्णय हमारे लिये किस प्रकार अहितकर है। आत्मा की अनादि–अनन्तता के स्वरूप का निर्णय हमारे क्यों और कितना महत्वपूर्ण और आवश्यक है तथा यह हो कैसे ?

यह जानने के लिये पढें –

हम अपने क्षुद्र क्षणिक स्वार्थों के वशीभूत भले ही कैसी भी (गैरजिम्मेदारी पूर्ण) बातें या व्यवहार करें पर ***अपने (आत्मा के) अनादि–अनन्त अस्तित्व के बारे में हमारी यह अनिश्चितता व भ्रान्ति ही आज तक हमारे लिये घातक बनी हुई है।***

किस प्रकार ?

इसी के कारण से हम अपने (आत्मा के) अविनाशी कल्याण का उपक्रम नहीं कर पाते हैं और सदा ही मात्र तत्कालीन महत्व की महत्वहीन बातों में ही उलझे रहते हैं।

यदि आत्मा की अनादि–अनंतता के बारे में हमारा संशयात्मक ज्ञान (अज्ञान) हमारे लिये हानिकारक है तो इसका एक उज्ज्वल पक्ष यह भी है कि (संशय ही सही) ***अनादि–अनंतता की संभावना की स्वीकृति मात्र एक शुभ संकेत भी है।*** कम से कम हम उसके अनादि अनन्त अस्तित्व को सिरे से खारिज तो नहीं करते हैं न ! यह ***संशयात्मक ज्ञान यद्यपि हमें लाभान्वित नहीं कर सकता, पर हम संशय को निश्चय में बदलने का उपक्रम तो कर ही सकते हैं न !***

अब आवश्यकता है अपने इस संशय सहित, कमजोर से मत को एक सुनिश्चित निर्णय में बदलने की।

सबसे पहिले हमें उन कारणों का पता लगाकर उनका निवारण करना चाहिये जो हमें आत्मा के अनादि–अनन्तता को स्वीकार करने से रोकते हैं।

प्रथम दृष्ट्या हमें निम्न कारण दृष्टिगोचर होते हैं –

1. वर्तमान में अशुभकर्मों में लिप्त रहते हुये भविष्य में उनका दुष्परिणाम भोगने से बचने की बेईमानी भरी चाह।

2. अनन्तकाल तक के लिये आत्मा के उत्थान के पुरुषार्थ से बचने की प्रमाद से युक्त भावना।

3. भविष्य के प्रति लालसा व उत्सुकता उनमें पाई जाती है व मात्र वही लोग भविष्यफल जानना चाहते हैं

और भविष्य के प्रति लालायित रहते हैं जिन्हें अपना भविष्य उज्ज्वल दिखाई दे।

सदा से ही मात्र संसार के दु:खों से त्रस्त वे लोग जिन्हें (हमें) अपने उज्ज्वल भविष्य की कल्पना भी नहीं होती है वे भविष्य के प्रति अरुचिवंत ही बने रहते हैं।

प्रथम प्रकार के लोग कुछ इसप्रकार के होते हैं –

एक बेईमान हत्यारा विचार करता है कि एक खून की सजा भी एक बार फांसी और 100 खून की सजा भी एक ही बार फांसी है तब अब मैं और खून करने से क्यों डरूँ; क्योंकि एक बार फांसी हो जाने के बाद कोई दुबारा तो फांसी लगा नहीं सकता है।

यदि आत्मा की अनन्तता स्वीकार कर ली जाये तो उसे डर लगता है कि उसके द्वारा किये गये प्रत्येक दुष्कर्म का फल उसे हर हाल में भुगतना ही होगा, इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में।

बस वस्तुस्वरूप का यही न्याय उस बेईमान को पसंद नहीं आता है, इसीलिये वह आत्मा की अनन्तता स्वीकार करने से इन्कार करने लगता है।

मानो इसके न मानने से वस्तुस्वरूप ही बदल जायेगा। पर क्या शतुर्मुर्ग द्वारा अपनी आँखें बन्द कर लेने से कभी खतरा टला है ?

दुनिया में ऐसे अनेकों लोग हैं जो निरंतर अनेकों पापकृत्यों में लिप्त रहते देखे जाते हैं और फिर भी फलते–फूलते रहते हैं, उन्हें उनके जीवन में उनके पापकृत्यों का कोई दुष्परिणाम दिखाई नहीं देता है; ऐसे लोग कदाचित् यह मानते हैं कि एक बार देह छूटी तो जीवन में किये गये समस्त पुण्य–पाप के फलों से मुक्ति हो गई बस !

उन्हें भी पुनर्जन्म स्वीकार नहीं होता।

वे यह भूल जाते हैं कि जब इस जीवन में कभी कोई शुभकार्य किया ही नहीं तो ये कौन से पुण्य फल रहे हैं, जो इस जीवन में मात्र पापकार्यों में लिप्त रहते हुये ही सब अनुकूलतायें उपलब्ध हो रही हैं, स्पष्ट है कि मात्र पूर्वकृत (पूर्वजन्म के) पुण्य ही तो फल रहे हैं न ! तब भला उनके आज के दुष्कृत्य भी फल दिये बिना कैसे रहेंगे ? आज नहीं तो कल, न सही इस जीवन में, अगले जीवन में ही सही।

इसप्रकार यदि आत्मा को कभी भी नष्ट नहीं होने वाला व अनन्तकाल तक विद्यमान रहने वाला द्रव्य मान लिया जाये तो उन्हें अपने किये गये दुष्कृत्यों का दुष्परिणाम भुगतने की बाध्यता स्पष्ट नजर आने लगती है। उनकी यही मजबूरी उन्हें आत्मा की अनादि–अनन्तता स्वीकृत नहीं होने देती है; क्योंकि उन्हें यह इष्ट नहीं है।

उक्त प्रकार के लोगों को क्या यह विचार नहीं करना चाहिये कि ***उनके मानने या न मानने से यथार्थ बदल नहीं जाता है। इसलिये उन्हें सत्य वस्तु स्वरूप को स्वीकार करना ही योग्य है और यदि वे दुष्कृत्यों का फल भोगने से बचना चाहते हैं तो उचित यही है कि वे दुष्कृत्य करने से बचें।***

दूसरी प्रकार के लोग वे लोग हैं –

जो हमेशा इसी समस्या से पीड़ित रहते कि ''कौन धुनेगा, कौन बुनेगा''।

वे जो आज अपने वर्तमान की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु व्यवस्थायें जुटाने में ही इतने व्यस्त और त्रस्त हैं कि यदि उन पर अनंतकाल तक के लिये आत्मा को सुखी बनाये रखने की जिम्मेदारी

और आ पड़े तो यह उनके लिये किसी महासंकट से कम नहीं।

अरे ! मात्र वर्तमान में ही जीने वाले वे ऐसे लोग हैं कि किसी तरह आज का दिन कट जाये बस; वे तो कल की बात सोचना भी नहीं चाहते हैं, तब भला आगामी अनंतकाल की बात तो कौन करे ?

तीसरे प्रकार के जिन लोगों की बात हमने ऊपर की वे भला क्यों आत्मा की अनादि-अनन्तता से सहमत हों, उसके प्रति उत्सुक हों ?

उनके लिये तो आत्मा की अनन्तता स्वीकार करने का मतलब है अनंतकाल तक दु:ख भोगने के लिये अपने आपको प्रस्तुत करना; क्योंकि सुख तो उन्होंने देखा ही नहीं, सुख की तो उन्हें कल्पना ही नहीं। उनके लिये तो जीवन के मायने मात्र दु:ख, संकट, समस्यायें और मुसीबतें ही हैं।

दुनियां में इतने ज्योतिषी हैं पर कितने लोग अपना भविष्य जानने के लिये उनके पास जाते हैं ?

क्या आप जानते हैं कि क्यों नहीं जाते हैं लोग उनके पास ?

क्योंकि अपने साथ कुछ अच्छा घटित होने की उन्हें कल्पना ही नहीं, आशा ही नहीं। बस इसीलिये वे कल के बारे में जानकर क्या करें।

अभी की तकलीफें क्या कम हैं भोगने के लिये जो आने वाले कष्टों को भी उनमें जोड़ लें।

''जब जो होगा सो देखा जायेगा'' ऐसी विचारधारा होती है उनकी।

कदाचित् कभी कुछ आशावादी लोग ज्योतिषियों के पास पहुँच भी जाते हैं तो ***वे ज्योतिषी की बात को तभी सच मानते व कहते हैं जब उसने उनके बारे में कुछ अच्छा कहा हो,*** यदि उसने उनके बारे में उनके मन के विपरीत कोई बात कह दी हो तो वे बिना बाहर निकलने तक का इन्तजार किये ही उसे भला-बुरा कहने लगते हैं, ढोंगी-पाखंडी तक करार देने लगते हैं।

उक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि ***हम मात्र वही सत्य स्वीकार करने के लिये तैयार होते हैं जो हमें हमारे लिये अनुकूल व सुखकर प्रतीत होता हो। इसके विपरीत हम अपने लिये प्रतिकूल सच्चाई को भी स्वीकार करने से इन्कार कर देते हैं।***

हमारे उक्त विश्लेषण से यह निष्कर्ष सामने आता है कि ***यदि हमें आत्मा के आनंदमय, सुखी भविष्य का विश्वास हो जाये तो आत्मा की अनन्तता स्वीकार करने के प्रति हमारी अरुचि, उपेक्षा और प्रतिरोध स्वत: समाप्त हो जायेगा। तब तो यह हमें अभीष्ट होगा, समझ में भी आने लगेगा और स्वीकृत भी होने लगेगा।***

ऐसा ही हो इसके लिये आवश्यक है कि हम मात्र आत्मा की अनादि-अनन्तता की ही चर्चा न करें, उसके साथ-साथ आत्मा के अनंत गुणों, यथा अनन्तसुख, अनन्तवीर्य, अनन्तज्ञान आदि की भी स्थापना करें।

हम इस तथ्य की स्थापना करें कि ***अनादि-अनंत यह आत्मा अनन्त गुणों का स्वामी, अनन्त वीर्यवान, सुख का सागर और शक्तियों का संग्रहालय है। तब ''अनन्तकाल तक के लिये अनन्तसुखी यह ''मैं'' भगवान आत्मा भला किसे स्वीकृत नहीं होगा ?***

ठहरिये ! कोई इस भ्रम में कभी न जीये कि अब तो सभी को यह बात समझ में आ ही जायेगी।

अरे ! अभी भी ***मात्र विरले ही लोगों को यह स्वीकृत होगा, सभी लोगों को तो यह तथ्य कभी भी स्वीकृत नहीं होगा पर अधिकांश लोगों को भी अभी यह तथ्य स्वीकृत नहीं होगा।***

क्यों ?

क्योंकि ***इस तथ्य की स्वीकृति के बाद यह जीव अनन्तकाल तक संसार में नहीं टिक सकता है, संसार में रहने की उसकी पात्रता समाप्त हो जाती है, तो ऐसे जीव जिनका अभी लम्बे समय तक संसार में रहना तय है उन्हें यह बात कैसे रुच सकती है, कैसे स्वीकृत हो सकती है ?***

उन अनंत अभव्य जीवों को तो यह बात कभी भी समझ में आयेगी ही नहीं जिन्हें कभी भी मोक्ष नहीं होना है, पर उन दूरान्दूर भव्यों को भी यह बात अभी स्वीकृत नहीं हो सकती है जिनके संसार का किनारा अभी निकट नहीं है।

अरे ! ***तीर्थंकर महावीर के जीव को मारीचि के भव में यह बात स्वीकृत क्यों नहीं हुई ?***

क्योंकि अभी उसे एक लम्बेकाल तक संसार में रहना शेष था न!

कहाँ आदिनाथ के समय का मारीचि; तीसरे काल के अंतिम समय में और कहाँ तीर्थंकर महावीर, चतुर्थकाल का अंतिम समय। पूरा चौथाकाल उसने संसार में ही बिता दिया। यदि मारीचि को तभी यह बात समझ में आ जाती तो फिर वह इतने लम्बे काल तक संसार में टिकता कैसे ?

इस प्रकार एक बार फिर यह तथ्य स्थापित होता है कि द्रव्य-गुण-पर्याय सहित अपने आत्मा के स्वरूप के संशयरहित, स्पष्ट, दृढ निर्धारण के बिना हमारा कल्याण संभव नहीं। **(क्रमश:)**

प्रकाशन तिथि : 13 सितम्बर 2015

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
सह-सम्पादक : **डॉ.संजीवकुमार गोधा**, एम.ए.द्वय, नेट, एम.फिल (जैनदर्शन), पीएच.डी. एवं **पण्डित परमात्मप्रकाश भारिल्ल**
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो निम्न पते पर भेजें -
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
E-Mail : ptstjaipur@yahoo.com **फैक्स :** (0141) 2704127